
 प्रवचन-2, गाथा-11

यह 'समयसार' एक सिद्धान्त है। ग्यारहवीं गाथा। छठवीं पूरी हो गई न? अब ग्यारहवीं। बात तो ऐसी है, प्रभु! यहाँ तो धर्म की बात है। जिससे जन्म-मरण रहित हुआ जाए, यह क्या चीज है? जन्म-मरण तो अनन्त बार किए, पुण्य भी अनन्त बार किया और पाप भी अनन्त बार किया। यह कोई नई चीज नहीं। इसी प्रकार अरबपति अनन्त बार हुआ है और बड़ा नौवें ग्रैवेयक का इन्द्र, अहमिन्द्र भी अनन्त बार हुआ है, किन्तु सम्यग्दर्शन क्या चीज है? और उसका विषय आत्मा कैसा है? इस बात को इसने अनन्त काल में ख्याल में लिया ही नहीं। इस बात को ख्याल में लेने के लिए यह 'समयसार' है। जगत में दूसरी सब बातें बहुत होती हैं।

ग्यारहवीं गाथा। यहाँ प्रश्न है। अब ऐसा प्रश्न उपस्थित होता.... ऐसा है मुख के सामने? पहले ऐसा कहा था कि व्यवहारनय को अंगीकार नहीं करना चाहिए.... क्या कहा? कि आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है – ऐसा भेद डालकर कहना, वह व्यवहार है। वह व्यवहार अंगीकार नहीं करना चाहिए। व्यवहार से – भाषा-भेद से कथन होता है, तथापि उस भेद का आदर करने योग्य नहीं; आदरणीय तो अन्दर अखण्डानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्यघन है, उसका स्वीकार और सत्कार और आदर करना। इसलिए पहले ऐसा कहा कि व्यवहार का अङ्गीकार नहीं करना।

यहाँ यह प्रश्न है कि जब आचार्य महाराज ऐसा कहना चाहते हैं कि यह आत्मा जो सच्चिदानन्द प्रभु है, वह अभेद, एकरूप है, तथापि इसको दर्शन-ज्ञान-चारित्र से – भेद से उसको समझाना, वह व्यवहार है। वह व्यवहार है, वह आये बिना रहता नहीं। समझाने के लिए व्यवहार आता अवश्य है, परन्तु व्यवहार अंगीकार करने योग्य नहीं। आहा....हा...! सूक्ष्म बात है प्रभु!

यहाँ तो जन्म-मरणरहित (होने की) बातें हैं। जिससे जन्म-मरण हो, (वह) तो अनन्त काल से कर रहा है बापू! अनन्त बार पुण्य भी किया और अनन्त बार पाप भी किया। आहा...हा...! अनन्त... अनन्त.... अनन्त... इतने किये कि जिसकी संख्या का पार

नहीं! तो भी भवभ्रमण का एक भी भव घटा नहीं और भव में भ्रमण करते-करते नरक के दुःख (जो भोगे) उसका वर्णन जब परमात्मा वीतराग सर्वज्ञदेव करते हैं (कि) प्रभु! तू नरक में गया। सात नरक हैं। सभी (बात) तर्क से-युक्ति से सिद्ध होती है (परन्तु) अभी लम्बी बात नहीं होती। नीचे नरक है, उसमें गया। उसके एक क्षण के दुःख...। लाख भव हो और लाख वाणी (इकट्टी) हो तो कह नहीं सकते, इतने तेरे दुःख थे। प्रभु! वह तुझे मालूम नहीं, तू भूल गया। भूल गया, इसलिए नहीं थे – ऐसा कैसे कहा जाए? प्रभु! जन्म के बाद के बारह महीने की बात की खबर है तुम्हें? माँ ने कैसे नहलाया, धुलाया, कैसे दिशा कराई बारह महीने में? जन्म से बारह महीने। (इसकी खबर है)? खबर नहीं, इसलिए नहीं थे – ऐसा कैसे कहा जा सकता है? ऐसे ही अनन्त काल के परिभ्रमण के दुःखों का स्मरण नहीं, इससे नहीं ऐसा कैसे कहा जा सकता है? प्रभु! अनन्त बार वहाँ गया है और परमात्मा तो ऐसा कहते हैं कि प्रभु! क्या कहूँ तुझे? तेरे एक क्षण के दुःखों को करोड़ों भव और करोड़ों जीभ से कहें तो एक क्षण के दुःख कहे नहीं जा सकते – ऐसे दुःख, प्रभु! तूने सहे हैं!! वह अज्ञान और मिथ्यात्व को कारण। बाकी तो सब अनन्त बार किया, परन्तु मिथ्यात्व दूर नहीं किया और सम्यग्दर्शन-आत्मज्ञान किया नहीं और आत्मज्ञान बिना जन्म-मरण का अन्त किसी भी प्रकार तीन काल में आये ऐसा नहीं।

दुनिया की ऋद्धि और सम्पदा देखकर लोगों को महिमा आ जाती है – बाहर की धूल देखकर! परन्तु आत्मा की सम्पदा क्या है? इसको सुनकर इसकी महिमा इसको आती नहीं! कि आत्मा अन्दर कौन है? इसमें इसकी सम्पदा-लक्ष्मी क्या है? बाहर की धूल सुने, इसके पास पाँच अरब है और दस अरब है और दस करोड़ है, सभी धूल है। ऐसा सुने वहाँ खुश-खुश हो जाता है। परन्तु इसमें अन्दर अनन्त अरबरूप अनन्त गुण तो आनन्द के पड़े हैं। आ...हा...हा...! इस बात की बात कहते हैं। वह अनन्त बार में अनन्त भव में कभी भी रुचिपूर्वक सुनी नहीं। सुनी है, क्योंकि अनन्त भव किये (हैं)। महाविदेहक्षेत्र में तीर्थकर की उपस्थिति सदा ही होती है। महाविदेह में तीन काल में किसी भी तीर्थकर का विरह नहीं होता। वहाँ अनन्त बार जन्मा है और उस कारण वह अनन्त बार उनके समवसरण में भी धर्म कथा सुनने गया है। इसने अनन्त बार धर्म कथा भी सुनी है परन्तु 'रुचिपूर्वक' सुनी

नहीं। इसको अन्दर की बात रुची (नहीं); अन्दर में यह आत्मा भिन्न चीज है और राग, वह विकार है; इस प्रकार रुचिपूर्वक वह बात सुनी नहीं। सुनी है, परन्तु 'रुचिपूर्वक' सुनी नहीं। रुचिपूर्वक सुने तो अन्तर में मार्ग किये बिना रहता नहीं।

इसलिए यहाँ प्रश्न है। प्रभु! जब आत्मा को समझाने के लिए बहुत अत्यन्त संक्षिप्त व्यवहार कहें तो 'दर्शन-ज्ञान और चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। (इतना भेद-व्यवहार तो आता ही है) प्रभु! यह तो व्यवहार आया! दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद से आत्मा समझाने के लिए भेद आया तो व्यवहार आया। तो वह व्यवहार अंगीकार क्यों नहीं करना? उस व्यवहार के बिना तो समझाया जाता नहीं, तो बाद में वह व्यवहार क्यों नहीं अंगीकार करना? ऐसा शिष्य का प्रश्न है।

11 वीं गाथा ऊँची है। जैन दर्शन का प्राण है!! 11 वीं गाथा। एक पण्डित है कैलाशचन्द्रजी (वाराणसी) उन्होंने 'यह 11 वीं गाथा जैन दर्शन का प्राण है' – ऐसा एक बार लिखा था। वस्तुस्वरूप के रहस्य का प्राण है। वह यह गाथा है। समझने के लिए धीमे से, धीरे से सुनना। भाई! आहा...! यहाँ तो भवरहित होने की बात है प्रभु! बाकी पुण्य और पाप अनन्त बार किये और धूल भी मिली और मरकर नरक-निगोद में गया। वह कोई चीज नहीं।

यहाँ वह पूछा है, प्रभु! व्यवहार को अंगीकार नहीं करना (ऐसा आपने पहले कहा) ...परन्तु वह यदि परमार्थ को कहनेवाला है—ऐसे व्यवहार को अंगीकार क्यों नहीं करना? क्या प्रश्न हुआ? प्रश्नकार ने प्रश्न किया कि 'दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह आत्मा' – ऐसा भेद डालकर व्यवहार करके समझाया – तो फिर वह व्यवहार अंगीकार क्यों नहीं करना? व्यवहार कहकर समझाया और व्यवहार तो समझाने में आया – तो वह व्यवहार क्यों नहीं अंगीकार करना? – ऐसा शिष्य का प्रश्न है। पहले प्रश्न का रूप समझ में आता है? राग करता है न? यह प्रश्न यहाँ नहीं है। यह अन्दर भगवान आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र और आनन्दस्वरूप है। ऐसा एक (रूप) स्वरूप में इतना भेद करके समझाना, यह व्यवहार हुआ। तो (शिष्य) कहता है कि व्यवहार आता तो है, तो यह व्यवहार अंगीकार क्यों नहीं करना? व्यवहार के बिना समझाने में नहीं आता तो वह व्यवहार अंगीकार क्यों नहीं करना? – ऐसा शिष्य का प्रश्न है। इसका यह उत्तर है।

जिसके हृदय में से यह भावना प्रगट हुई है कि प्रभु! यह आत्मा अन्दर वस्तु है भगवान! एकरूप है, इसे समझने के लिए तीन प्रकार तो समझाना पड़ता है कि जो श्रद्धा, वह आत्मा; ज्ञान वह, आत्मा; आनन्द, वह आत्मा – ऐसा भेद करके तो समझाना पड़ता है, तो वह भेद व्यवहार आता तो है, तो वह व्यवहार आता है, उसको अंगीकार क्यों नहीं करना? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। समझ में आया कुछ? आहा...हा...! इसका उत्तर है। ऐसी जिसको अन्तर में जिज्ञासा हुई है, उसको यह उत्तर दिया है! गाथा –

व्यवहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।

भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो ॥11॥

नीचे हरिगीत। मूल गाथा कुन्दकुन्दाचार्य की (है)। दो हजार वर्ष पहले (हुए) मुनि की गाथा है। (उसका) हरिगीत किया है।

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।

भूतार्थ आश्रित आत्मा, सदृष्टि निश्चय होय है ॥11॥

टीका, आहा...हा...! बात जरा अपूर्व तो है प्रभु! अनन्त काल में बाकी सब किया परन्तु भव-भ्रमण नहीं मिटा। नरक और निगोद में ऐसे भव किये हैं। प्याज और लहसुन में एक श्वांस में अठारह भव किये हैं। एक श्वांस ऐसा आये, उसमें अठारह भव किये हैं। ऐसे निगोद के भव अनन्त बार किये हैं, प्रभु! अनन्त काल से यह भटक रहा है। इसको अब व्यवहार से छुड़ाकर निश्चय को समझाना, यह किस प्रकार है? यह बात यहाँ कही जाती है।

टीका : व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ होने से... सूक्ष्म बात है। जरा शान्ति से सुनना, प्रभु! व्यवहारनय अर्थात् क्या? कि व्यवहार अर्थात् आत्मा अखण्डानन्द प्रभु अभेद है, उसको समझाने का प्रकार आवे, उसको व्यवहार कहते हैं। वह सारा ही व्यवहार अभूतार्थ है। (अर्थात्) सारा ही झूठा है। सारा अर्थात् क्या? थोड़ी सूक्ष्म बात पड़ेगी। यह तो एक-एक शब्द का महा अर्थ है! व्यवहारनय अर्थात् भेदवाली कथनशैली, वह व्यवहारनय। अब वह व्यवहारनय सारा ही झूठा है। इसके आश्रय से आत्मा का ज्ञान नहीं होता। सारा अर्थात् चार प्रकार है। व्यवहार के चार प्रकार हैं। यह गाथा इतनी ऊँची है, बापू! तुमने लिखी है। 'झवेरचन्दभाई' ने इसमें लिखा है कि (कि) छट्टी और ग्यारहवीं पढ़ना। आ....हा...हा...!

सारा अर्थात्? आत्मा में जो यह राग होता है, वह राग जो जानने में आता है उसको 'असद्भूत उपचार' कहते हैं। 'असद्भूत व्यवहार उपचार' कहते हैं। यह व्यवहार का एक भेद है। जो राग आता है, वह जानने में आता (है)। वह जानने में आता है, इसको असद्भूत व्यवहार 'उपचार' कहने में आता है।

दूसरी बात – जो जानने में उपयोग स्थूल है, सूक्ष्म नहीं; इसलिए जानने में आता है, उसकी अपेक्षा (दूसरा राग) अन्दर बाकी रह जाता है। जानने योग्य दूसरा राग रह जाता है। उस राग को जानना, (उसे) 'असद्भूत व्यवहार अनुपचार' कहते हैं। ऐसी बातें हैं। यह पूरी गाथा ऐसी है। बापू! आहा....! राग है, वह जानने में आये, इसको 'असद्भूत उपचार' आरोप (करके) कहने में (आता है) और उस ही समय (दूसरा) राग है; उपयोग बहुत स्थूल है, इसलिए वह जानने में नहीं आता, उस राग को असद्भूत अनुपचार व्यवहार कहा जाता है तो ये दो व्यवहार – 'असद्भूत व्यवहार' के दो भेद हो गये।

अब, 'सद्भूत व्यवहार' – राग को आत्मा जानता है – ऐसा कहना सद्भूत उपचारनय है। यहाँ तो इन चारों ही नयों का निषेध करेंगे। पहले चार बतायेगे और फिर निषेध करेंगे कि वह आदर करने योग्य नहीं। आ...हा...हा...! दो बात समझ में आयी? राग, जो राग होता है, इसमें जानना—नहीं जानना के दो प्रकार पड़ते हैं। क्योंकि उपयोग स्थूल है; इसलिए जाननेयोग्य राग जितना ख्याल में आये इसको 'असद्भूत व्यवहार उपचार' और उस समय जाननेयोग्य जो राग अन्दर बाकी रहता है, उसको असद्भूत अनुपचार व्यवहार कहते हैं। दो बात हुई, असद्भूत व्यवहार की दो बात हुई। बाद में दूसरी दो बात। सद्भूत व्यवहार के दो भाग। 'यह सब ही' (जो कहा उसमें) चार भाग आते हैं।

'आत्मा, राग को जानता है' वह आत्मा का जानना (होता) है, वह सद्भूत-अपनी पर्याय है और पर को जानता है, इसलिए 'सद्भूत उपचार' है। अर...र...! ऐसी बातें अब! राग (को) आत्मा जानता है, वह जानने की दशा, वह सद्भूत-अपनी है, परन्तु राग पर है, उसको जानता (है), इसलिए उसको 'सद्भूत उपचार व्यवहारनय' कहने में आता है। मार्ग तो जो होगा, वह आयेगा, बापू! दूसरा कहाँ से आवे? आहा...हा...!

अनन्त काल से बाहर की गूँथड़ी कर-करके मर गया है! बड़ा बादशाह अरबपति

होकर मरा, नरक और निगोद में चला गया है। आहा...हा... ! वहाँ किसी ने इसके दुःख के सामने देखा नहीं। भगवान तो ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू मनुष्य में भी युवा अवस्था में इतनी बार मरा कि तेरे मरण समय में तेरी माँ रोवे, इसके आँसू के समुद्र भर जाय। क्या कहा? मनुष्य में जवानी में तू मर गया, वहाँ तेरी माँ के आँसू आये, वह इतनी बार मर गया और इतनी बार आँसू आये कि इन आँसुओं के समुद्र भर जाये। इतनी बार तू मनुष्य में जवानी में मरकर तेरी माँ को तूने रुलाया है। आहा...हा... ! परन्तु तूने भवरहित होने की बात अन्दर प्रेम से, रुचि से सुनी नहीं! आहा...हा... !

इसलिए यहाँ कहते हैं (कि) इस व्यवहार के चार भेद हैं, वह निषेध करने योग्य हैं। राग के दो भेद हुए, वह निषेध करने योग्य हैं। अब सद्भूत के दो भेद। ज्ञान स्वयं का है और राग को जानता है – ऐसा कहना; (वह) अपना है, इसलिए सद्भूत इसे (राग को) जानता है – ऐसा कहना, उपचार-आरोप! वह 'सद्भूत व्यवहार उपचार' कहा जाता है।

चौथो बोल – यह 'ज्ञान, वह आत्मा', 'ज्ञान, वह आत्मा', इतना भेद पड़ा, इसलिए उसे 'सद्भूत व्यवहार अनुपचार' कहा जाता है – ऐसी बात है। इसकी चीज क्या? वह कभी भी सुना नहीं। आहा...हा... !

यहाँ तो, अभी व्यवहार ऐसा है, वह आदरणीय नहीं – ऐसा कहना है। वह चार प्रकार का जो व्यवहार है, वह आदरणीय नहीं। परन्तु अभी व्यवहार को समझता नहीं (कि) किसको व्यवहार कहना! लड़की-लड़के का व्यवहार, उस व्यवहार की यहाँ बात ही नहीं है। वह तो परवस्तु है, इसके साथ तेरा क्या सम्बन्ध है? इसका आत्मा भिन्न, इसका शरीर भिन्न, तेरा आत्मा भिन्न, तेरे शरीर के परमाणु भिन्न।

यहाँ तो तेरे में होनेवाली व्यवहार की दशा की पहले बात है। वह व्यवहार अंगीकार करनेयोग्य नहीं, वह इसे समझाते हैं। उस राग को (जानने के) दो प्रकार (है)। (स्थूल राग को) 'उपचार से जानना' और सूक्ष्म को जानना वह 'अनुपचार से', राग को जानना वह 'सद्भूत उपचार' और ज्ञान वह आत्मा, वह 'सद्भूत अनुपचार', उन सब ही में यह चार बोल आते हैं। आ...हा...हा... !

व्यवहार नय सब ही... सब ही अर्थात् यह चार '....अभूतार्थ होने से...' वह व्यवहारनय झूठा है। वस्तु का स्वरूप, वह व्यवहारनय (का विषय) नहीं है। आ...हा...हा...हा...! (यह ग्यारहवीं गाथा) जैन दर्शन का प्राण है।

त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की वाणी में मुख्य यह आया है। परमात्मा बिराजते हैं। महाविदेह में वर्तमान (में) साक्षात् समवसरण में बिराजते हैं। इन्द्र और गणधर जाते हैं। नाग, बाघ और सिंह भी जंगल में से समवसरण में सुनने जाते हैं। देव के इन्द्र भी अपना वैभव छोड़कर भगवान के पास सुनने जाते हैं। वह वाणी कैसी होगी, बापू! आ...हा...हा...! देवलोक के इन्द्र का वैभव 32 लाख विमान! एक विमान में असंख्य देव! और करोड़ों अप्सराएँ! इसका स्वामी!! वह समकृति ज्ञानी है, अभी आत्मज्ञानी है, वह भी परमात्मा के पास धर्म की-आत्मा की बात सुनने (जाता है) धर्म प्रगट हुआ है, फिर भी (उसको) पूर्ण करने के लिए सुनने आता है। ऐसी धर्म की कथा महंगी है!! जो वैभव छोड़कर सुनने जाता है। यहाँ (तो) घर से (निकलता है तो पूछता है) 'साग आया? नहीं, तो मैं साग ले आऊँ बाद में चला जाऊँगा!!' ऐसी तो अभी इसको सुनने की कीमत है। साग ले आए या नहीं? कौन लाया? नहीं (लाये)? नहीं तो मैं ले आऊँ, बाद में (सुनने) जाऊँगा!! इतनी कीमत!! इसको सुनने की कीमत कितनी? आ...हा...हा...!

यहाँ कहते हैं, यह जो व्यवहार के चार भेद कहे, वह अभूतार्थ है। अभूतार्थ अर्थात् झूठा है। वह आत्मा को लाभदायक नहीं है। लक्ष्मीचन्दभाई! यह तुम्हारी लिखी हुई है कि छट्टी गाथा और ग्यारहवीं गाथा वाँचना। आ...हा...हा... प्रभु! वह व्यवहार है, वह सब ही झूठा है। है अवश्य, परन्तु उसका आश्रय करने योग्य नहीं, वह आदर करने योग्य नहीं; जानने योग्य है। आहा...हा...! अब ऐसी बातें। बाहर के क्रियाकाण्ड की बात तो कहाँ रह गई? अन्तर में राग होता है, उसके दो प्रकार। राग को जानना और ज्ञान, वह आत्मा – ऐसे (चार) भेद हुए, वह भी यहाँ तो झूठे कहे हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

व्यवहारनय सब ही.... सब ही अर्थात् (यह) चार। अभूतार्थ होने से अविद्यमान... (अर्थात्) वस्तु में-स्वरूप में नहीं, वैसी बात करनेवाला व्यवहारनय है; इसलिए वह व्यवहारनय आदरणीय है नहीं। आ...हा...हा...! ऐसी वार्ता, ऐसा उपदेश!

अविद्यमान, असत्य, अभूत... (अर्थात्) नहीं, ऐसे अर्थ को प्रगट करता है... वास्तविक वस्तु—भगवान अभेद है, उसमें भेद नहीं, उसकी (अभेद वस्तु की) व्यवहारनय चार प्रकार से भेद की बात करता है; इसलिए उसे असत्य कहा जाता है। भाषा तो सादी है परन्तु अब पकड़ने, नहीं पकड़ने में तो जीव स्वतन्त्र है। अनन्त काल भटकते हो गया है। बापू! आहा...हा...!

असद्भूत होने से शुद्धनय एक ही भूतार्थ... है। वह चार प्रकार के जो नय कहे — ज्ञान के अंश। नय अर्थात् ज्ञान के अंश, वह चार प्रकार (के) कहे, वह सब असत्य है। वह आदरणीय नहीं, आश्रय करने योग्य नहीं, अंगीकार करने योग्य नहीं। आ...हा...हा...! तब (क्या आदरणीय है?) शुद्धनय एक ही... आहा...हा...! आत्मा अखण्डानन्द प्रभु अन्दर है, अमृत का सागर भरा है, वह एकरूप अभेद है। उस अभेद को बतानेवाला जो ज्ञान है, उस ज्ञान को शुद्धनय कहा जाता है। आहा...हा...! व्यवहार जितना कहा, उतना सब आदरणीय नहीं — ऐसा कहा और जो यह निश्चय है... आ...हा...हा...! एक ही भूतार्थ होने से... त्रिकाली ज्ञायक चिदानन्द प्रभु! अनन्त गुण का पिण्ड! एकरूप वस्तु है, उसको एकरूप जानना, उसका नाम शुद्धनय कहा जाता है, इसको सम्यग्दर्शन होता है। आहा...हा...! शुद्धनय का विषय त्रिकाली अभेद आत्मा, इसका अनुभव करने से सच्चा समकित — सच्चा दर्शन होता है। तभी उसके भव के अन्त का किनारा आता है। आ...हा...हा...! नहीं तो भव भ्रमण कर-करके मर गया, अनन्त काल से। अनन्त अवतार किए बापा! आहा...हा...!

वह शुद्धनय... फिर वजन कहाँ है? एक ही! एक ही! दूसरा नय नहीं। एक ही भूतार्थ होने से... एक ही नय सच्चा है। जो त्रिकाली अखण्डानन्द प्रभु अनन्त गुण (स्वरूप एकरूप को विषय करता है)। जैसे शक्कर है, इसमें मिठास, सफेदी वह सब भेद करना, वह व्यवहार है। शक्कर-शक्कररूप है, इसको एकरूप जानना, वह अभेद है; इसी प्रकार भगवान आत्मा को यह ज्ञान के भेद से— इन चार प्रकार से जानना, वह व्यवहार है। वह असत्यार्थ वस्तु है। अन्दर एकरूप चैतन्य वस्तु है। त्रिकाली अभेद अखण्डानन्द प्रभु! इसको जाननेवाला शुद्धनय अर्थात् सम्यग्ज्ञान का अंश, वह एक ही सत्य होने से (आदर

करने योग्य है)। भूतार्थ अर्थात् सत्य। आ...हा...हा...!

अन्तर वस्तु भगवान् चैतन्य प्रभु अनन्त गुण सम्पन्न है, इतना भेद करना भी व्यवहार है। वह व्यवहार भी छोड़कर, अभेद अखण्डानन्द प्रभु के ऊपर दृष्टि देने से, शुद्धनय का विषय आत्मा, वह उसकी दृष्टि में आता है; इसलिए उस नय को सत्यार्थ कहा जाता है। सत्य वस्तु दृष्टि में आती है; इसलिए उस दृष्टि को सत्य कहा जाता है। जवेरचन्दभाई! आहा...हा...! ऐसा है। ग्यारहवीं गाथा मांगी है न! तुम्हीं ने माँगी है या नहीं?

आहा...हा...! भगवंत! तेरी महिमा का क्या पार कहें प्रभु! आ...हा...हा...! 'प्रभु' तो सब को 'प्रभु' तरीके ही बुलाते हैं। आचार्य ने भी 72 गाथा में ऐसा कहा है। इसमें 72 गाथा है न? भगवान् आत्मा! आ...हा...हा...हा...! अनन्त गुणों का पिण्ड है – इतना भेद भी नहीं। भेद भी सद्भूत व्यवहारनय में जाता है। वह एकरूप चैतन्य है; अनन्त गुण का पिण्ड है, एकरूप है – ऐसा जो शुद्धनय अर्थात् एकरूप को बतानेवाला जो ज्ञान, अभेद को बतानेवाला जो ज्ञान; उस ज्ञान को यहाँ शुद्धनय कहा गया है। वह एक ही भूतार्थ है, वह शुद्धनय एक ही सत्य है। आहा...हा...! है? अन्दर है या नहीं?

दो हजार वर्ष पहले की यह गाथा है। यह टीका है हजार वर्ष पहले की – अमृतचन्द्र आचार्य की। परन्तु दरकार कब की है। आहा...हा...! अरे! अनन्त काल हो गया... 'अनन्त काल से भटका बिना भान भगवान्, सेव्या नहीं गुरु संत को', सच्चे सन्त किसे कहना। समकित किसे कहना? सच्चे गुरु किसे कहना? उनकी पहचान बिना, जिस-तिस को सेव्या किन्तु आत्मा की, सत् का सेवन करनेवालों की पहचान इसने नहीं की, और इनकी पहचान नहीं की, इसलिए आत्मा की पहचान नहीं हुई।

इसलिए कहते हैं कि शुद्धनय जो आत्मा को एकरूप बतानेवाला अन्तरज्ञान, वह एक ही सत्य है। है? शुद्धनय एक ही! एक भूतार्थ है – ऐसा भी नहीं कहा। 'एक ही भूतार्थ है', एकान्त किया है। 'भूतार्थ' अर्थात् सत्य होने से 'विद्यमान' (अर्थात्) जैसा आत्मा का स्वरूप है; अनन्त गुणों का पिण्ड एकरूप अभेद है; एकरूप वस्तु है, उस विद्यमान को बताता है, सत्य को बताता है, विद्यमान अर्थ को वह प्रगट करता है। वह शुद्धनय – जो ज्ञान का अंश त्रिकाल अभेद को देखता है और सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है, वह शुद्धनय

आत्मा को प्रत्यक्ष प्रगट करके बताता है, अर्थात् अनुभवता है। आहा...हा...! अब ऐसी बातें। चमनभाई ! सूक्ष्म बात है, बापा !

यह तो तुम्हारा आमन्त्रण था, इसलिए आना पड़ा, बाकी हमारी बात तो दूसरी है।

मुमुक्षु – आपने बहुत उपकार किया।

पूज्य गुरुदेवश्री – नहीं तो, हम तो काठियावाड़ में ही रहते हैं – सोनगढ़ में ही 45 वर्ष बिताये। 45 वर्ष में आये और 45 निकाले। वहीं और वहाँ 90 निकाले। वहाँ तो हजारों व्यक्ति आते हैं। जंगल में करोड़ों रुपये डल गये हैं। **बड़ा तीर्थ हो गया है, वहाँ तो।**

मुमुक्षु – आप जहाँ होंगे, वहाँ तीर्थ नहीं होगा तो क्या होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री – इसके कारण हुआ है। होने के काल हुआ है। छब्बीस लाख का तो एक मकान है – परमागम (मन्दिर) जिसमें पोने चार लाख अक्षर लिखे हैं। वह छब्बीस लाख का एक मकान। वह (भी) 6 वर्ष पहले की बात है। अभी तो 50 लाख का हो। ऐसा एक परमागम मन्दिर है। **वहाँ तो जंगल में बड़ा मंगल हो गया है!!** परन्तु वहाँ (यह) सुननेवाले सदा होते हैं। सुबह, दोपहर, रात तीनों (समय)। इससे समझना थोड़ा सरल पड़ता है, परन्तु यह नहीं सुना तो उसको यह थोड़ा कठिन पड़ता है। कठिन पड़े, फिर भी इसे समझने जैसा है न प्रभु !

वह शुद्धनय एक ही सत्यार्थ होने से वह 'विद्यमान' –मौजूद पदार्थ आत्मा 'सत्य' वस्तु आत्मा, 'भूत' अर्थात् वास्तविक अर्थ आत्मा, उसे वह **प्रगट करता है**। ज्ञान का जो अंश अन्दर के स्वभाव में अभेद में जाता है, उसे अभेद आत्मा का अनुभव होता है। उसकी पर्याय में उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। वह शुद्धनय आत्मा को प्रगट करता है अर्थात् कि आत्मा में जो अतीन्द्रिय आनन्द है, उस पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट करता है। आ...हा...हा...! लक्ष्मीचन्दभाई ! जेठाभाई कहाँ गये ?

मुमुक्षु – गुरुदेव ! आपने तो सोनगढ़ में सबको निहाल कर दिया परन्तु अफ्रीका में भी निहाल कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री – आ...हा...हा...! ऐसी बातें हैं, प्रभु क्या कहें !

मुमुक्षु – परम उपकार है आपश्री का। परदेश में आकर आपने हमको निहाल

कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री – प्रभु! धीरे-धीरे समझने जैसी बात है, भगवान! बाहर की लक्ष्मी, इज्जत सभी धूल धमाल है।

यहाँ तो व्यवहारनय (का) भी निषेध (करते) हैं! आहा...हा...! आत्मा में भेद करके समझाना (कि) 'ज्ञान, वह आत्मा' वह भी सद्भूत अनुपचरित व्यवहार है, वह भी निषेध (करने योग्य) है। आ...हा...हा...! वह (शुद्धनय) सत्य अर्थ को बताता है। **प्रगट करता है**। 'प्रगट करता है'। अर्थात् क्या? वस्तु तो वस्तु है परन्तु ज्ञान का जो अंश अभेद को अनुभवता है, उसको आत्मा के आनन्द का स्वाद आने पर 'यह आत्मा आनन्दमय है' – इस प्रकार आत्मा प्रगट होता है। आ...हा...हा...! ऐसी बात है। इन दो पंक्तियों में तो कितना भरा है। यह कोई कथा नहीं, यह वार्ता नहीं, यह तो अन्दर भगवत्स्वरूप की बात है, प्रभु! आहा...!

व्यवहारनय सब ही झूठा है, क्योंकि वह व्यवहार भेद को बताता है और निश्चयनय एक सत्य है, क्योंकि वह अभेद वस्तु अखण्डानन्द प्रभु! उसका अनुभव कराता है; इसलिए वह निश्चयनय एक ही आदरणीय है। झवेरचन्दभाई! आहा...हा...!

यह तो अब पूरे हिन्दुस्तान में प्रचार हुआ है।

मुमुक्षु – पूरी दुनिया में हो गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री – सोनगढ़ से 22 लाख पुस्तकें छपी हैं। 22 लाख!! और 08 लाख इन पण्डितजी ने जयपुर में छापी हैं। 30 लाख (पुस्तकें) छप गयी हैं। चारों ओर बहुत प्रचार है – लन्दन, अमेरिका में... यह बात सब जगह गई है। थोड़ी... थोड़ी... गन्ध गयी है थोड़ी।

मुमुक्षु – पूरी दुनिया में फैल गई है।

पूज्य गुरुदेवश्री – परन्तु वस्तु ऐसी है, बापू! आहा...हा...!

मुमुक्षु – लन्दन में, अमेरिका में, अफ्रीका में सब जगह प्रचार हो गया है!

पूज्य गुरुदेवश्री – हाँ, प्रचार है न.... है न! परन्तु वस्तु समझे उसको यह लाभ

हो ऐसा है। आहा...हा...!

मुमुक्षु — विचार करते हैं तो अन्दर में कुछ होता है। पूरी जिन्दगी पाप में निकाली है।

पूज्य गुरुदेवश्री — बात सच है बापू! यह सब किया है, बहुत किया! आहा...हा...! परन्तु जो यह अन्दर में उतारने की चीज है, वह कभी भी सुनी नहीं। सुनी तो भी नकारता है कि यह सूक्ष्म पड़ती है। वह सूक्ष्म पड़ती है — ऐसा करके निकाल देता है। आहा...हा...!

दो न्याय दिये कि व्यवहारनय के जो चार प्रकार हैं, वह सत्य को प्रगट नहीं करते; मात्र भेद को प्रगट करते हैं; इसलिए वह वस्तुस्थिति नहीं और एक अर्थात् शुद्धनय—सम्यग्ज्ञान का अंश जो अन्तर में जाता है, वह एक ही नय सत्य है कि जो एक नय सत्य प्रगट करता है। जैसा परमात्मस्वभाव आत्मा का है, वैसा उसको प्रगट बताता है, और उसको आनन्द का प्रगट अनुभव होता है। शुद्धनय का विषय जानने पर अन्दर आनन्द का नाथ भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द से भरा हुआ — छलाछल भरा है। इस संसार में जितना पैसा और यह धूल और राजा और रंक ये सभी दुःखी प्राणी हैं। राग के दुःखी, राग की घाणी में पिल रहे हैं। यहाँ तो इनसे भिन्न चीज की बात है। क्या कहा?

मुमुक्षु — अज्ञानी को इसमें सुख लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री — अज्ञान में तो चाहे जो माने। बालक होता है। देखा है? बारह महीने का बालक हो, उसे यदि अधिक दूध पिलाया हो तो पतली दस्त हो जाता है। देखा है? वह पतली दस्त हो जाये तो गर्मी में ऐसा ठण्डा लगता है। वह बालक पतली दस्त ऐसा चाटे! दूध अधिक दे दिया गया हो तो उस बालक को पतली दस्त हो जाती है, गर्मी के दिन हों, उसकी माँ उसके दो पैर ऐसे करके बैठाया हो, मल विसर्जित करने! पतली दस्त हो उसे वह चाटे! इसी प्रकार अनादि से अज्ञानी, बालक की तरह आत्मा के आनन्द को भूलकर राग और द्वेष की विष्टा को चाटता है! यहाँ किसी की शर्म नहीं, यहाँ किसी की लाज नहीं। यहाँ तो भगवान तीन लोक के नाथ! जो (बात) जगत में प्रगट करते हैं, वह यहाँ प्रगट होता है। आड़तिया की तरह यह बात आचार्य महाराज करते हैं। आ...हा...हा...हा...! 'कुन्दकुन्दाचार्य', जिस तरह आड़तिया होता है न.... ऐसे तीर्थकर के आड़तिया हैं। वे

आड़तिया की तरह बात करते हैं। समझ में आया ?

यह बात दृष्टान्त से बताते हैं... कहते हैं कि इसको समझाने के लिए हम दृष्टान्त देते हैं। आहा...हा...! जैसे, प्रबल कीचड़ के मिलने से... पानी में कीचड़ मिलने से जिसका सहज एक निर्मलभाव तिरोभूत (आच्छादित) हो गया है... पानी का निर्मल स्वभाव—निर्मलभाव, कीचड़ के कारण ढँक गया है। कीचड़ का भाव सामने आ गया है। कीचड़... प्रबल कीचड़ के... प्रबल कीचड़ के (लिखा है), अकेला कीचड़—ऐसा नहीं। आ...हा...हा...! प्रबल कीचड़ के मिलने से जिसका सहज एक निर्मल भाव तिरोभूत (आच्छादित) हो गया है ऐसे जल का... पानी में कीचड़ के मिलने से पानी मलिन दिखता है। वह मैल इसका स्वरूप नहीं; मैला तो कीचड़ के कारण दिखता है। इसका स्वभाव तो निर्मल और ठण्डा है। जल! उस जल का अनुभव करनेवाले पुरुष.... आहा...हा...! जल और कीचड़ का विवेक न करनेवाले... वह पानी और कीचड़ दोनों साथ हैं — (ऐसा माननेवाले)। एक गाँव ऐसा था। एक गाँव 'मूली' के पास में है। वहाँ एक तालाब है (उसमें) पानी मैला ही है। वहाँ कुआँ नहीं है। हम एक बार वहाँ गये थे तो हमको मैला पानी दिया (और कहा) 'महाराज! यहाँ तो मैला पानी (मिलता है)। पानी सब मैला होता है, कुआँ नहीं। मैलवाला पानी। बाद में घर जाकर—निथारे तो (स्वच्छ) हो जाए और इसको ऐसा जो पीवे.... अज्ञानी अनादि से इसको ऐसा ही पीता है। (ऐसा) कहते हैं। अन्दर भगवान निर्मलानन्द जल पड़ा है। यह जल निर्मल है, परन्तु कीचड़ के कारण मलिन दिखता है।'

ऐसे जल का अनुभव करनेवाले पुरुष, जल और कादव का विवेक नहीं करनेवाले... आ...हा...हा...! उस पानी और कीचड़ की भिन्नता को नहीं जाननेवाले बहुत से तो —... बहुत से तो ऐसा लिया है। सब तो नहीं। ज्ञानी तो अन्दर आत्मा का अनुभव करते हैं, इसलिए सब नहीं (परन्तु) बहुत से—अज्ञानी जीव आहा...हा...! लौकिक अज्ञानी, कीचड़सहित जल को पीते हैं — ऐसा कहते हैं। आहा... यह तो दृष्टान्त है हीं! ...बहुत से तो उसको (जल को) मलिन ही अनुभवते हैं;.... पानी मैला है, यह पानी, पानी मैला है — ऐसा यह जानता है। पानी मैला नहीं, मैला तो कीचड़ के कारण दिखता है। आ...हा...हा...!

किन्तु कितने ही अपने हाथ से डाले हुए कतकफल... एक निर्मल औषधि होती है। पंसारी की दुकान पर एक निर्मल औषधि होती है। इसको (पानी में) डाले तो कीचड़ अलग हो जाता है, पानी अलग हो जाता है – ऐसा इसका स्वभाव है। इस प्रकार (निर्मली औषधि)के पड़नेमात्र से उत्पन्न हुआ.... जब निर्मल औषधि डाले, तब पानी और कीचड़ दोनों भिन्न हो जाते हैं। जल और कीचड़ के विवेकता से अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किए गये... निर्मली औषधि स्वयं ने डाली है। नौकर से कहकर डाली नहीं है – ऐसा कहते हैं। नौकर से कहा नहीं (कि) तू इसमें निर्मल औषधि डाल। इसमें स्वयं ने डाली है। इसलिए कहते हैं आहा...! अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किए गये... अर्थात् स्वयं ने पानी में—कीचड़ में निर्मली औषधि डाली और देखा कि पानी तो बिलकुल निर्मल है, कीचड़ भिन्न है। आहा...हा...!

सहज एक निर्मल भावपने से उस जल को निर्मल ही अनुभव करते हैं.... विवेकपना जिसको नहीं, वे कीचड़सहित अनुभव करते हैं। और (निर्मल औषधि)के पड़नेमात्र से उत्पन्न जल—कीचड़ के विवेकता से अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किए गये सहज एक निर्मलभावपने से उस (जल को) निर्मल ही अनुभव करते हैं।... पानी को निर्मल अनुभवते हैं। स्वयं के पुरुषार्थ से निर्मली औषधि डालकर कीचड़ से भिन्न जल को अनुभवते हैं। वह दृष्टान्त (हुआ)।

इसी प्रकार....। उस दृष्टान्त की तरह... प्रबल कर्म के मिलने से... आहा...हा...! भगवान तो निर्मलानन्द है, किन्तु जड़ कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में आने से, निमित्त के सम्बन्ध में आने से; कर्म से नहीं, किन्तु उसके सम्बन्ध में आने से। 'कर्म के मिलने से—ऐसा कहा है न?' कर्म का निमित्त हुआ। जिसका सहज एक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है... आहा...हा...! थोड़ी सूक्ष्म बात है। अनादि आत्मा सहज ज्ञायकभाव है, वह तो कभी भी तिरोभूत नहीं होता – ढँकता नहीं, फिर भी यहाँ तिरोभूत कहा। अर्थात् (क्या)? उस कर्म के मैल को अनुभव करनेवाला, साक्षात् चैतन्य है, उसको जानता नहीं, इसलिए उसको तिरोभूत है। मैलवाले आत्मा को अनुभव करनेवाले को वह ज्ञायकभाव ढँका हुआ – तिरोभूत है। ज्ञायकभाव तिरोभूत और आविर्भूत हो सकता नहीं। क्या कहते हैं? पण्डितजी! ज्ञायकभाव तो त्रिकाल निरावरण, निर्मल ही है, किन्तु मैल से अनुभव करनेवाले को चीज

है, वह दिखती नहीं, मैल दिखता है; इसलिए उसको तिरोभूत कहने में आता है। वस्तु तिरोभूत नहीं हुई। थोड़ी सूक्ष्म बात है।

आत्मा तो निर्मलानन्द शुद्ध है, किन्तु कर्म के, राग के, द्वेष के, पुण्य-पाप के भाव से मलिन अनुभवता है; इसलिए उसे अन्दर ज्ञायकभाव विद्यमान है, वह ढँकता नहीं, परन्तु मल-मैल के अनुभव करनेवाले को अनुभव में नहीं आता, उसे ढँका हुआ दिखाई देता है। समझ में आया? जो ज्ञायकभाव है – चैतन्यप्रभु-द्रव्य, वह तो त्रिकाल निरावरण है। जो अन्दर चैतन्य-प्रकाश का पूर है। आ...हा...हा...हा...! सच्चिदानन्द प्रभु द्रव्य-वस्तु त्रिकाल निरावरण है। त्रिकाल अखण्ड एक अविनाशी है! वह कोई तिरोभूत और आविर्भूत होता नहीं। 'तिरोभूत' अर्थात् ढँकना और 'आविर्भाव' अर्थात् प्रगट होना, वह ज्ञायकभाव में होता नहीं, परन्तु राग और द्वेष का अनुभव करनेवाले को, वह ज्ञायकभाव प्रगट होने पर भी, राग के अनुभव करनेवाले को वह ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है, उसको ढँक गया है। आहा...हा...! समझ में आया उसमें?

ज्ञायकभाव तिरोभूत होता नहीं, परन्तु राग के अनुभव करनेवाले के तिरोभूत है। कारण कि इसकी दृष्टि वहाँ नहीं, (उसके) राग की दृष्टि है। पुण्य और पाप के विकल्प में पड़ा, वहाँ पड़ा, वहाँ फँस गया है। इसलिए ज्ञायकभाव प्रगट वस्तु होने पर भी, उसको तिरोभूत अर्थात् ढँक गई है। प्रगट है, वह अज्ञानी के ढँक गई है। वस्तु ढँकी नहीं। आहा...हा...! जरा अन्तर (लगता है किन्तु) थोड़े शब्द में भी अन्तर है।

ज्ञायकभाव त्रिकाली चैतन्यरसकन्द है, प्रज्ञा ब्रह्मस्वरूप है। प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान और ब्रह्म अर्थात् आनन्द। वह ज्ञान और आनन्द स्वरूप है, वह तो त्रिकाल निरावरण है, उसको आवरण (नहीं) – वस्तु में आवरण नहीं होता। वस्तु में आवरण हो तो वस्तु अवस्तु हो जाए। समझ में आया? आ...हा...हा...! ऐसी बातें हैं। परन्तु वह प्रगट चीज अन्दर होने पर भी, उसके ऊपर नजर नहीं करके, अकेला पुण्य-पाप, राग-द्वेष में नजरवाले को वह प्रगट चीज है, वह अप्रगट अर्थात् तिरोभूत-ढँक गई है। मैल का-राग का अनुभव करनेवाले के चीज प्रगट होने पर भी, उसको ढँक गई है। आहा...हा...! भाषा पाठ ऐसा है। आहा...हा...!

(समयसार) 320 गाथा में तो कहा है कि जो चैतन्यरसकन्द वस्तु है, वह तो

त्रिकाल निरावरण है। त्रिकाल निरावरण है, अखण्ड है, एक है, प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है, अविनश्वर है, शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्मतत्त्व द्रव्य तो त्रिकाली शुद्ध ही है। इसमें कभी भी अशुद्ध और शुद्ध ऐसे भेद नहीं पड़ते। वस्तु तो ज्ञायक (है), वह त्रिकाल है, किन्तु अज्ञानी को राग के अनुभव के सामने ज्ञायकभाव अन्दर होने पर भी, उसकी तरफ दृष्टि नहीं; इसलिए उसको – राग के अनुभववाले को, ज्ञायकभाव प्रगट होने पर भी तिरोभूत हो गया है। आ...हा...हा...! यह तो सिद्धान्त है! आहा...हा...! पचाने के लिए समय चाहिए, बापू! आहा...हा...!

जैसे, पानी निर्मल होने पर भी, कीचड़वाला अनुभवते हैं – उसको पानी तिरोभूत हो गया है, ढँक गया है। पानी तो निर्मल है परन्तु कीचड़सहित पीनेवाले को पानी ढँक गया है। इस कारण (ढँक गया है बाकी) पानी तो पानी है। पानी में कुछ ढँका नहीं। ऐसे ही आत्मा ज्ञायकभाव है, चैतन्य आनन्दरस है, सच्चिदानन्द ध्रुव नित्यानन्द है, अविनाशी परमात्मस्वरूप है, वह तो त्रिकाल निरावरण है, किन्तु उसके ऊपर जिसकी दृष्टि नहीं और राग के, दया-दान के, काम-क्रोध के विकारी परिणाम (के) ऊपर नजर है, उसको (वस्तु) प्रगट होने पर भी अप्रगट है, उसको तिरोभूत-ढँक गई – ऐसा कहने में आता है। आहा...हा...! इसमें कितना याद रखना! इस शब्द का अर्थ सूक्ष्म है। **प्रबल कर्म के उदय मिलने से जिसका सहज एक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है...** इस शब्द का यह अर्थ है। सहज ज्ञायकभाव कभी भी तिरोभूत नहीं होता। पण्डितजी! आहा...हा...! भगवान तो द्रव्यस्वरूप-वस्तुस्वरूप स्फटिकमणि की तरह निर्मलानन्द (स्वरूप है)। कल कहा था न।

**जैसे निर्मलता रे स्फटिक की, वैसे ही जीव स्वभाव रे
श्री जिन वीर रे धर्म प्रकाशिया, प्रबल कषाय अभाव रे॥**

भगवान ने पुण्य और पाप के कषाय से रहित धर्म बताया है, उसको वह देखता नहीं और राग को देखता (है) और पुण्य को देखता है कि मैंने पुण्य किया, और मैंने यह किया और मैंने यह किया...। पुण्य आदि को देखनेवाले को, ज्ञायकभाव त्रिकाल निरावरण होने पर भी उसको वह प्रगट नहीं होता। राग का अनुभव करनेवाले को नहीं दिखता, इसलिए उसको तिरोभूत हो गया है – ऐसा कहते हैं। आ...हा...हा...! ऐसी बातें हैं! ऐसा धर्म किस

प्रकार का ! बापू ! धर्म का स्वरूप ऐसा है, भाई ! भगवन्त ! तेरी चीज कोई अन्दर भिन्न है, अलौकिक है, तूने उसे सुना नहीं। भाई ! आहा...हा... !

यह क्या कहा ? कि जो आत्मा है, वह तो ज्ञायकस्वरूप सच्चिदानन्द, सत्-चिदानन्द, ज्ञानानन्द, त्रिकाल चिदानन्दस्वरूप है। इसको तो कोई आवरण या मलिनता है नहीं – ऐसी चीज वह अन्दर है, किन्तु ऐसी चीज होने पर भी, जिसको राग, पुण्य और पाप के भाव ऊपर लक्ष्य है, उसको वह लक्ष्य में आता नहीं, इसलिए प्रगट चीज होने पर भी, उसको तिरोभूत-ढँक गया – ऐसा कहने में आता है। आ...हा...हा... ! ऐसी बात है प्रभु !

आ...हा... ! प्रगट चीज है, त्रिकाल निरावरण है। अन्दर त्रिकाल अखण्ड एकरूप है, परमात्मस्वरूप अखण्डानन्द एकरूप है। वह कभी भी – ढँकना (या) आविर्भाव / प्रगट होना – ऐसे दो बोल उसको लागू नहीं होते। समझ में आया ? परन्तु जिसकी दृष्टि अनादि से ज्ञायकभाव सच्चिदानन्द प्रभु के ऊपर नहीं होने से और पुण्य और पाप, और दया और दान, ऐसे राग के ऊपर लक्ष्य होने से, 'उसको' ढँक गया है – ऐसा कहने में आता है। आ...हा...हा... !

ऐसी बात है प्रभु ! ऐसा उपदेश है। हमारे वहाँ तो पैतालीस वर्ष से चलता है। 'सोनगढ़' में तो यह पैतालीस वर्ष से चलता है। वहाँ उन्नीसवीं बार 'समयसार' चलता है। अठारह बार तो बँच गया। अक्षर-अक्षर, अर्थ, हों ! अक्षर-अक्षर का अर्थ करके अठारह बार बँच गया। उन्नीसवीं बार चलता है, वहाँ सुननेवाले रामजीभाई जैसे वकील, 97 वर्ष की उम्र, 97 वर्ष की उम्र तीस वर्ष पहले 200 रुपये लेते, पाँच घण्टे कोर्ट में जाए, 200 (रुपये) लेते। 35 वर्ष पहले, हों ! अभी की कीमत, पहले के एक लाख और अभी के 25 लाख दोनों समान, क्योंकि भाव, सबके बढ़ गये न भाव ? पैसे की कीमत घट गयी। आहा...हा... ! वे रामजीभाई जैसे समझनेवाले सामने बैठे होते हैं, बड़े, 97 वर्ष की उम्र के। वहाँ बँचता रहता है, इसलिए बहुत सूक्ष्मता होती है ! भाई ! यहाँ तो अन्दर पद्धतिसर बात चलती है।

(यहाँ कहते हैं) जल मैला है – ऐसा नहीं। वैसे आत्मा मैला है – ऐसा नहीं परन्तु जल को कीचड़ से अनुभवनेवाले को जल ढँक गया है। जल तो जल ही है परन्तु

कीचड़सहित का अनुभव करनेवाले को जल ढँक गया है। उसी प्रकार भगवान चिदानन्द प्रभु, ज्ञायकभाव सत्.... सत्.... है, वह कभी भी न हो, ऐसा नहीं। सत् है, उसका कभी भी नाश हो, ऐसा नहीं। सत् है, उसको कभी कोई आवरण नहीं होता। सत् है, उसको कमी होती नहीं! सत् है, उसमें विकार होता नहीं। आ...हा...हा...हा...! ऐसी वह चीज अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है, किन्तु राग के अनुभवनेवाले को... आहा...हा..! ऐसी चीज पड़ी है, फिर भी पर्याय ऊपर दृष्टि है (उस कारण तिरोभूत हो गई है)। पर्याय अर्थात्; अवस्था, राग ऊपर दृष्टि है। इसलिए वह विद्यमान चीज है। वह ढँक (गई है) आँखें बन्द तो और वस्तु सामने हो किन्तु आँखें बन्द हैं तो वस्तु नहीं ऐसा (हुआ), उसके लिए तो नहीं ऐसी हो गई न? आँख बन्द हो गई है (और) सामने चीज आई सोना या चाँदी (किन्तु उसको वह दिखती नहीं) ऐसे (ही) यह चीज तो अन्दर है! आ...हा...हा...हा...! परन्तु पुण्य और पाप की विकल्प के—राग के प्रेमियों को आत्मा ढँक गया दिखता है। इसका आत्मा तिरोभूत हो गया दिखता है। है? नहीं करनेवाले आत्मा को कर्मवेग, नहीं करनेवाले को व्यवहार... प्रबल कर्म के मिलने से जिसका सहज एक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है — ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाले... वह कैसे होते हैं?

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)